CHAPTER 23

HINDI

Doctoral Theses

210. आशा रानी

बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक की कहानी में मूल्य-संक्रमण ।

निर्देशक : डॉ. पवन कुमार

Th 17971

सारांश

20वीं शताब्दी के प्रथम दशक से लेकर अंतिम दशक के मध्य तक कहानीकारों ने जीवन संबंधों की जटिलता, सूक्ष्मता, विविधता, विराटता आदि को समसामयिक जीवन-स्थितियों में व्यक्त किया है । आज की कहानी का रचना संसार बहुत व्यापक है । कहानीकारों ने सामाजिक जीवन में दिखायी पड़ने वाले स्थूल यथार्थ को ही रचना में रूपांतरित नहीं किया है बल्कि मानवीय संवेदना के भीतरी कोनों को स्पर्श करने की कोशिश की है । 10वें दशक की कहानियों की धार को आर्थिक स्थितियों से उत्पन्न संकटों ने और व्यापक बनाया है । आर्थिक परिस्थितियां जीवन के अनेक पक्षों को गहरे रूप से प्रभावित करती है । कथा जगत् में जिसे संक्रमण, युग बोध, या चेतना के नाम से जानते है स्वतः ही एक नया रूप धारण करते संघर्षों से इतर मनुष्य मन की तंद्रा को भंग करता हुआ यह शब्द उसे कहीं न कहीं द्वंद्वग्रस्त भी करता है । जहां वह पुरातन और नवीन के मध्य चुनाव करने की ऊह पोह से जूझता नज़र आता है और इस द्वंद्व में विजय उसे एक नया परिवर्तन उपहार में देती है और पराजय उसे भय, संत्रास, निराशा, कुठा और अंधेरे में जकड़ लेती है । मनुष्य परिपाटी से हटकर नहीं सोच पाता और अंततः अपने ही हाथो 'स्व' की मृत्यु कर बैठता हैं । संक्रमण का यदि ''नैगेटिव आस्पैक्ट'' टटोलें तो यही है। संक्रमण जिसे मनुष्य ने स्वयं अपने में समा लिया है न कि बढ़कर उसकी बुराइयों का विनाश किया है । किंतु इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि इसका कोई अधिक 'सकारात्मक परिणाम' नहीं है । जो है, वह है सदियों से चलती आ रही कुप्रथाओं

ने दम तोड़ा है । समाज में परम्परा/रिवा़ज/व्यवहार के नाम पर होने वाली यातनाएं अब जाकर कहीं थमी हैं ।

विषय सूची

1. हिन्दी कहानी विभिन्न पड़ावः सन् 1900 तक की पूर्वपीठिका । 2. हिन्दी कहानी विभिन्न पड़ाव : सन् 1971 से 1990 तक की पूर्वपीठिका । 3. हिन्दी कहानी में मूल्य संक्रमण (पुरानी पीढ़ी का नया दृष्टिकोण) । 4. 20वीं शताब्दी के अंतिम दशक की कहानियां : एक मूल्यांकन । 5. अंतिम दशक की कहानी में आम आदमी और मूल्यों का संकट : बदलती अवधारणा । 6. अंतिम दशक की कहानी में भूमंडलीकरण । उपसंहार । परिशिष्ट ।

211. कमलेश कुमारी

हिंदी रंगकर्म में जातीय रंगमंच की खोज ।

निर्देशक : प्रो. रमेश गौतम

Th 17979

सारांश

हिंदी रंगकर्म में जातीय जीवन की खोज करने के लिए निरंतर प्रयास जारी रहे हैं। छठे सातवें दशक में हिंदी रंगकर्म को भारतीय रूप देने और जन सामान्य से इसे जोड़ने के लिए विभिन्न रंगकर्मियों ने अपनी परंपरा के व्यावहारिक, सर्जनात्मक एवं विलक्षण रूप की ओर ध्यान दिया । अपनी जड़ों से जुड़े संस्कृत रंगमंच और लोक रंगमंच को अपना आधार बनाया क्योंकि इसी में हमारी जातीय अस्मिता की पहचान छिपी थी । अपनी जातीय अस्मिता से जुड़ाव के कारण ही संस्कृत रंगमंच और लोक रंगमंच के सूत्रों को 'जातीय रंगमंच' कह सकते है । व्यापक अर्थों में रंगमंच का यह जातीय स्वरूप ही राष्ट्रीय रूप धारण कर लेता है। जातीय से यहाँ तात्पर्य किसी जाति विशेष के रंगमंच से नहीं है बल्कि सांस्कृतिक संवेदना से युक्त संस्कृत रंगमंच और लोक रंगमंच के तत्त्वों से है जिनका प्रयोग हिंदी रंगकर्म की समृद्धि और जनमानस से उसके जुड़ाव के लिए रंगकर्मी कर रहे हैं । अतीत की समृद्धि और सौंदर्य को वर्तमान में खोज कर हिंदी रंगकर्म ने नई राह के अन्वेषण का जोख़िम उठाया और सफलता प्राप्त की ।

विषय सूची

1. हिन्दी रंगकर्म की विकास यात्रा (स्वतंत्रता पूर्व) । 2. जातीय संकल्पना और जातीय रंगमंच । 3. भारतीय रंगकर्म में जातीय रंगमंच के तत्त्व । 4. आधुनिक हिंदी रंगकर्म में जातीय रंगमंच के तत्त्व (1947 तक) । 5. नए रंगांदोलन में जातीय रंगमंच के तत्त्व (1947 के पश्चात्) । उपसंहार । परिशिष्ट ।

212. गुप्ता (नीतू)

भक्तिकालीन काव्य में अभिव्यक्त प्रेम के विविध आयाम ।

निर्देशक : डॉ. मुकेश गर्ग

Th 17974

सारांश

भक्ति और प्रेम रागात्मक संबंधों का आधार है । इन दोनों का अनूठा संगम भक्ति काव्य में मिलता है । इतिहास में यह काल विवादित एवं जीवंत काल है । अपने उद्‌भव, विकास, प्रवृतियों तथा काव्यदृष्टियों को लेकर समय-समय पर विद्वान मनीषियों ने इस काल पर कुछ-न-कुछ लिखा है । साहित्य के अलावा भक्तिकाल समाज वैज्ञानिकों एवं इतिहासकारों के लिए अध्ययन व शोध का विषय बना रहा । इसके कारणों की तलाश में पता चलता है कि यह काल और इसका काव्य मनुष्यता का अक्षय स्त्रोत है । यूरोप से बिल्कुल अलग भारत का मध्यकाल (विशेषतः भक्तिकाल) अंधकार का काल न रहकर प्रकाश और चेतना का काल है । भक्ति काव्य के कवियों ने जहाँ सामंती जड़ता पर करारी चोट की, वहीं दूसरी ओर प्रेम को ही बैकुंठी माना । सभी भक्त कवियों ने अंधविश्वास, कुरीतियों, जड़ता, आडम्बर आदि की कट्‌टरता, धार्मिक कट्‌टरता एवं मनसबदारी प्रथा की अवहेलना की। भक्तिकाल के संत कवियों ने श्रम एवं प्रेम की महत्ता को स्थापित करके प्रेम को ईश्वर तुल्य माना । ईश्वर और प्रेम इनकी काव्य दृष्टियों और पंक्तियों में स्थान पाते हैं। निर्गुण मत के संत कवियों ने प्रेम और पेशे को एक माना और पेशे की महत्ता एवं गरिमा के लिए सभी संत कवि जीते और मरते हैं। अनपढ़ समाज को कवि बनानेकी क्षमता इस काल के कवियों में हैं । तुलसी, कबीर, जायसी की रचनाओं में अनपढ़ समाज अपनी रचनाओं को घुला-मिलाकर कवि का दर्जा पा जाते है । समन्वय की विराट चेष्टा भक्ति काव्य की विशेषता है ।

विषय सूची

1. प्रेम : अवधारणा, स्वरूप और वैचारिक आधार । 2. भक्तिकालीन संत काव्य में अभिव्यक्त प्रेम के विविध आयाम । 3. भक्तिकालीन सूफी काव्य में अभिव्याक्त प्रेम के विविध आयाम । 4. भक्तिकालीन कृष्ण-भक्ति काव्य में अभिव्यक्त प्रेम के विविध आयाम । 5.भक्तिकालीन राम-भक्ति काव्य में अभिव्यक्त प्रेम के विविध आयाम । 6. भक्तिकालीन काव्य में अभिव्यक्त प्रेम का समीक्षात्मक अध्ययन । उपसंहार । परिशिष्ट ।

213. चित्रा

समकालीन कथा साहित्य में 'जादुई-यथार्थवाद' ।

निर्देशक : डॉ. सुरेश धीगड़ा

Th 17973

सारांश

जादुई यथार्थवाद एक लेखन शैली है, जो तत्कालीन यथार्थवादी विधि से हटकर अपने में प्रतीक, बिंब, कल्पना, स्वप्न, लोक विश्वास, लोक मान्यताएँ, मिथक, किस्सागोई, भूत-प्रेत आदि को समाविष्ट कर एक ऐसे लोक का चित्रण करती है, जो देखने में भले ही जादुई लगे मगर उसका कथ्य यथार्थ ही होता है। जादुई यथार्थवाद का सर्वप्रथम प्रयोग म्यूनिख के फ्रांज राह एक जर्मन चित्रकार थे । उनके चित्रों की प्रशंसा इसलिए की जाती थी कि उनके चित्रों के वस्तु वृत्त तथा विषय प्रायः काल्पनिक या यों कहें अद्‌भुत और अलौकिक होते थें । उनमें कुछ स्वप्न की विशेषताएँ भी होती थी। धीरे-धीरे यह शब्द साहित्य में प्रयोग किया जाने लगा। कोलम्बिया के उपन्यासकार ग्राबिएल गर्सीआ मार्केस को विशेष रूप से इस अवधारणा की व्याख्या करने तथा उपन्यासों में प्रयोग करने का श्रेय प्राप्त है। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि समकालीन हिंदी साहित्य में 'जादुई यथार्थवाद' (शिल्प) का प्रभाव उदय प्रकाश, मनोहरश्याम जोशी, विनोद कुमार शुक्ल, राजेश जोशी, अलका सरावगी जैसे कथाकारों मे लक्षित किया जा सकता है । लेकिन सभी लेखकों का जादुई-यथार्थवाद को अपने साहित्य में प्रयोग करने का तरीका अलग है। मनोहरश्याम जोशी किस्से-कहानी, लोक-कथाओं, लोक विश्वासों के माध्यम से हमें किसी दूसरे ही लोक में ले

जाते है। उदयप्रकाश समाज में बढ़ती विसंगतियों के साथ कल्पना, फैंटेसी, भूत-प्रेत का साथ लेकर समाज की बुराईयों को और अधिक गहरा देते है। विनोद कुमार शुक्ल में कल्पना तथा फैंटसी को स्थान तो दिया गया है, लेकिन उनका जादुई यथार्थवाद शिल्प के माध्यम से प्रकट हुआ है। अलका सरावगी अपनी बातें लोक विश्वासों और लोक मान्यताओं को आधार बनाते हुए किस्सों के माध्यम से कहती हैं, 'कोई बात नही' इसका एक उदाहरण है। रोजश जोशी की कहानियों में फैंटसी के साथ बाल सुलभ कल्पना तथा प्रतीक है, जिसके द्वारा वह गहरी बातें कह जाते है।

विषय सूची

1. जादुई यथार्थवाद का स्वरूप और अवधारणा । 2. भारतीय और पाश्चात्य जादुई यथार्थवाद का तुलनात्मक अध्ययन । 3. मनोहरश्याम जोशी के उपन्यासों में जादुई-यथार्थवाद। 4. उदय प्रकाश के कहानी-संग्रहों में 'जादुई-स्थिति'। 5. विनोद कुमार शुक्ल के उपन्यासों में जादुई-यथार्थवाद । 6. अलका सरावगी के उपन्यासों में जादुई यथार्थवाद। 7. राजेश जोशी की कहानियों में जादुई यथार्थवाद। उपसंहार। परिशिष्ट।

214. नायक (विभा)

यौनकर्मी महिलाओं का जीवन और हिंदी पत्रिकाएँ ।

निर्देशक : डॉ. तेजसिंह

Th 17970

सारांश

यौनकर्म का दायरा अब बहुत बढ़ गया है, विश्व भर में छोटी-छोटी बच्चियों की मांग इस व्यावसाय के लिए तीव्रता से बढ़ी है, जिसके लिए बच्चियों की ख़रीद-फरोख़्त, अपहरण बलात्कार और मानव तस्करी जैसे अपराधों में भी वृद्धि हुई है। इन्हीं बढ़ते अपरोधों के कारण स्त्रियाँ समाज में अब तक असुरक्षित महसूस करती है। यौनकर्म में प्रवृत्त महिलाओं के आंकड़े बताते हैं कि उन्हें उन्हीं के विश्वस्तों ने देह की मंडी में वस्तु के समान बेचा । कितनी दुःखद स्थिति हैं कि इस समाज में स्त्री केवल देह के रूप में जानी जाती है उसके मस्तिष्क की यहां कोई अहमियत नहीं। उस पर भी हमारे हिंदी बुद्धिजीवियों का हाल यह है कि वे इन महिलाओं के विषय में बात करने

तक से कतराते है । संभवतः वे इस बात से भयभीत होते हैं, कि कहीं कोई उनके चरित्र को लेकर आशंकित न हो जाए। अन्यथा क्या कारण हो सकता है कि देश की बड़ी हिंदी पत्रिकाओं में इन महिलाओं के विषय में न के बराबर सामग्री उपलब्ध होती है । 10 वर्ष की एक लंबी अवधि कुछेक पन्नों में ही सिमट कर रह जाती है । इस दौरान क्रमशः यह स्पष्ट होता जाता है कि कैसे स्त्री का संप्रभु व्यक्तित्व तिरोहित होता गया और वह एक यौनिक उपकरण, मात्र बनकर रह गई । स्त्री का यह रूपातंरित स्वरूप समाज को अस्वीकार्य होकर भी स्वीकार्य रहा। पुरूषवादी सोच इन्हें समाज के लिए आवश्यक भी मानती रही और इनके कृत्य को असामाजिक मानकर इनसे घृणा भी करती रही । अपने इसी दोहरे व्यक्तित्व के कारण समाज इन महिलाओं के विषय में पूर्वग्रहमुक्त होकर न सोच सका । यही कारण है कि ये महिलाएँ देह के दलदल में फँसती चली गई । इससे न केवल इन महिलाओं का जीवन तहस-नहस हुआ बल्कि इनके बच्चों का भविष्य भी अंधकारमय हो गया ।

विषय सूची

1. समाज में स्त्री की स्थिति एवं स्त्रीत्व निर्माण। 2. यौनकर्मः इतिहास से वर्तमान तक। 3. यौन उद्योग की सरंचना एवं यौनकर्म का वृहत् स्वरूप। 4. उपेक्षित जीवन का यथार्थ और हिंदी पत्रकारिता। 5. हाशिए का जीवन हाशिए की जुबानी। 6. यौनकर्म महिलाओं के साक्षात्कार। उपसंहार। संदर्भ ग्रंथ सूची ।

215. मीणा (बन्ना राम)

आदिवासी अस्मिता-विमर्श और हिन्दी कथा-साहित्य ।

निर्देशक : प्रो. सुधीश पचौरी

Th 17969

सारांश

भारतीय समुदाय में आदिवासी समाज एकमात्र ऐसा मनुष्य समूह है जो आज भी विकास और वैज्ञानिकता से अनभिज्ञ और अछूता रहकर अपनी 'वीरान दुनिया' में सिमटा हुआ है । अस्मिता-बोध रहित होने एवं शेष समाज से पृथक् रहने के कारण आदिवासी समाज मुख्यधारा के मानव समाज के अन्दर आ रहे विचलनों से तो दूर रहा लेकिन इसक चलते वह शेष समाज से कटता चला गया और एक समय वह

आया जब वह अस्तित्व संकट के कगार पर पहुँच गया । अपनी जीवन शैली की जिन ख़ासियतों को सुरक्षित और संरक्षित करने के लिए वह मुख्यधारा के समाज से दूरी बनाता रहा, उन्हीं विशेषताओं और सरंचनाओं को विज्ञान और विकास ने तहस-नहस कर डाला । धीरे-धीरे इस समुदाय के अन्दर भी विचलन पैदा हो गया। परिणामस्वरूप आज आदिवासी समाज का अस्तित्व और अस्मिता संकट में है । इसलिए आज न सिर्फ़ स्वयं आदिवासी समाज को, बल्कि शेष समाज को भी उनके अस्तित्व और अस्मिता के प्रश्न को लेकर सजग और सक्रिय होने की आवश्यकता है । इन दिनों आदिवासियों के अधिकारों, उनकी नई सामाजिक भूमिका एवं विकास की समस्याओं को केन्द्रीय सरकार एवं बहुत सी स्वयं सेवी संस्थाएँ संबोधित कर रही हैं । रचना एवं विचार प्रक्रिया में उनकी आहटें सुनी जा सकती है । कथा-साहित्य के अध्ययन के साथ नए रचनात्मक घटना-विकासों का अध्ययन भी आवश्यक है । यह इस शोध योजना का एक बड़ा हिस्सा है ।

विषय सूची

1. अस्मिता-विमर्श : अर्थ, स्वरूप और वयाप्ति । 2. आदिवासी समाज की अवधारणा, इतिहास और संरचना । 3. आदिवासी समाज और अस्मिता विमर्श । 4. आदिवासी अस्मिता-विमर्श और हिन्दी कथा-साहित्य । 5. आदिवासी जीवन का हिन्दी की अभिव्यक्ति-प्रणाली पर प्रभाव । उपसंहार । परिशिष्ट ।

216. यादव (अंशु)

भय के समकालीन प्रसंग और हिन्दी कहानी (1991-2005) ।

निर्देशिका : डा. कुमुद शर्मा

Th 17980

सारांश

वर्तमान समय में हिन्दी कहानी ने स्वयं को साहित्य की एक प्रमुख विधा के रूप में पूर्णतया स्थापित कर लिया है जिसकी परिवेशगत चिंता बहुत गहरी और सरोकार बहुत व्यापक है । हिन्दी कहानी आरंभ से ही अपने समय और समाज से जुड़े प्रश्नों से टकराती रही है । लेकिन समकालीन कहानी 'जीवन के सच' से सबसे अधिक जुड़ी है । वर्तमान ज्वलंत मुद्दों स्त्री और दलित प्रश्न, बाज़ार का बढ़ता

हस्तक्षेप, उदारीकरण, सांप्रदायिकता, असमान विकास और आतंकवाद जैसे प्रश्नों ने हिन्दी कहानी को सबसे अधिक प्रभावित किया है । यही कारण है कि पिछले कुछ सालों में नये-नये कहानीकारों की एक ऐसी फौज तैयार हो चुकी है जो न केलन रचनात्मक दुष्टि से समृद्ध है बल्कि हिन्दी कहानी विद्या को समृद्ध करने में भी उनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका है जैसे स्वयं प्रकाश, उदय प्रकाश, अखिलेश, ओमप्रकाश वाल्मीकि, अजय नावरिया, कुणाल सिंह, क्षमा शर्मा, मित्र, मो. आरिफ, नीलाक्षी सिंह, जया जादवानी आदि । नयी पीढ़ी के इन रचनाकारों ने समयकालीन कहानीकारों के रूप में पहचान बनाई है ।

विषय सूची

1. साहित्य और भय का मनोविज्ञान । 2. भय का स्रोत-(एक) : सामाजिक ढाँचा, स्त्रियों की स्थिति और हिन्दी कहानी । 3. भय का स्रोत (दो) : दलित, इतिहास प्रक्रिया और हिन्दी कहानी । 4. भय का स्रोत (तीन) : बहुलतावादी समाज, अल्पसंख्यकों का भय और हिन्दी कहानी । 5. भय का स्रोत (चार) : विकास की विडम्बना, भय की सृष्टि और हिन्दी कहानी । 6. भय का स्रोत (पाँच) : बाज़ार, प्रौघोगिकी और हिन्दी कहानी । उपसंहार । परिशिष्ट ।

217. राजेश कुमार

स्वातं«योत्तर हिंदी कथा-साहित्य में विस्थापन की विडंबना ।

निर्देशक : डॉ. संजय कुमार

Th 17976

सारांश

विस्थापन संबंधी स्वातन्«योत्तर हिन्दी कथा-साहित्य में परिवेशगत् यथार्थ और लेखक की अनुभूति का अटूट रिश्ता है । यह सत्य को उसकी आन्तरिक जटिलता में पाने के लिए प्रयत्नशील है इसी कारण विस्थापन संबंधी स्वातन्«योत्तर हिन्दी कथा-साहित्य (उपन्यास व कहानियाँ) में विस्थापन की विकृतियाँ एवं स्वदेशी है और बोध भी मौलिक है । उसका लेखक, समाज के मध्य, समाज के साथ जीता, जीवन के यथार्थ की भोगता हुआ और न्याय के लिए संघर्ष करता हुआ सम्वेदनशील व्यक्ति है । लाखों लोगो का ऐतिहासिक विस्थापन करने वाले भारत-विभाजन के पश्चात् स्वातन्«योत्तर

भारत में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया का आधार 'आर्थिक वृद्धि' माना गया और उसे ही विकास का पर्याय भी । सरकार की इस 'विनम्र हिंसा' का सबसे अधिक प्रभाव दलितों, आदिवासियों, महिलाओं और बुजुर्गो पर पड़ता हे । पुनर्वास-योजनाएँ, कुछ तो सरकार के निराशापूर्ण व्यवहार और कुछ किसानों के संगठित न होने के कारण सरकारी दफ्तरों में धूल से अटी पड़ी रहती है विस्थापन के पश्चात् यदि सामाजिक रूप से समरूप समाज कहीं एक स्थान पर न बसे तो इससे महिलाओं और बच्चों की खुशहाली गम्भीर रूप से प्रभावित होती है ।

विषय सूची

1. स्वतन्त्रता का सन्दर्भ और विस्थापन। 2. विकास की प्रक्रिया और विस्थापन। 3. हिन्दी कथा-साहित्य में विस्थापन के विभिन्न रूपों की अभिव्यक्ति। 4. विस्थापन संबंधी स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कथा-साहित्य की भाषा। 5. स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में विस्थापन की विडम्बना। 6. स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानी में विस्थापन की विडम्बना। उपसंहार । परिशिष्ट ।

218. वर्मा (नीरू)

स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी नाटकों में लोकतांत्रिक मूल्यों का विकास ।

निर्देशक : डॉ. महेश आनंद

Th 18294

सारांश

प्रस्तुत शोध प्रबंध में लोकतंत्र का अर्थ, उसकी अवधारणा तथा प्रमुख लोकतांत्रिक मूल्यों के विकास पर प्रकाश डाला गया है। स्वाधीनता आंदोलन के संदर्भ में तथा स्वतंत्रता सेनानियों की दृष्टि से लोकतंत्र, लोकतांत्रिक व्यवस्था और इसके मूल्यों की पृष्ठभूमि पर विचार किया गया है। इसके अतिरिक्त स्वतंत्र भारत की राजनीतिक व्यवस्था पर विचार करते हुए लोकतांत्रिक मूल्यों के व्यावहारिक रूप और राजनीतिक संस्थाओं की प्रकृति पर प्रकाश डाला गया है। स्वतंत्रतापूर्व हिन्दी नाटककारों की लोकतांत्रिक दृष्टि को स्पष्ट किया गया है। भारतेन्दु युग, प्रसाद युग और प्रसादोत्तर युग के नाट्यलेखन में उभरे लोकतांत्रिक मूल्यों के प्रारंभिक बिन्दुओं की खोज की गई है। स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी नाटक और लोकतांत्रिक मूल्यों को नवीन रंग चेतना के संदर्भ

में परखा गया है । यह नई रंग चेतना किस प्रकार लोकतांत्रिक मूल्यों को उसके तमाम रूप-रंग के साथ परखने में सहायक बनी - इसका रेखांकन किया गया है। स्वातन्«योत्तर प्रमुख हिन्दी नाटकों का विश्लेषण लोकतांत्रिक मूल्यों के संदर्भ में किया गया है। रंगमंच के धरातल पर सयम के साथ-साथ बदलती लोकतांत्रिक चेतना, परिस्थितियों के साथ बदलते इसके मूल्यों का विशिष्ट अध्ययन किया गया है।

विषय सूची

1. लोकतंत्र और लोकतांत्रिक मूल्य। 2. स्वतंत्रतापूर्व हिन्दी नाटककारों की लोकतांत्रिक दृष्टि। 3. स्वातन्«योत्तर हिन्दी नाटक और लोकतांत्रिक मूल्य। 4. स्वतंत्रता के बाद के प्रमुख हिन्दी नाटक और लोकतांत्रिक मूल्य। उपसंहार एवं संदर्भ ग्रंथ सूची ।

219. शंखवार (मनीषा)

कृष्णा सोबती और अमृता प्रीतम के नारी पात्र।

निर्देशिका : सुधा सिंह

Th 17978

सारांश

हिन्दी साहित्य के आधुनिक युग के महिला उपन्यासकारों में 'कृष्णा सोबती और अमृता प्रीतम' का विशिष्ट स्थान है । अनुभव और अभिव्यक्ति दोनों स्तरों पर इन रचनाकारों ने अपने समकालीन साहित्यकारों से सर्वथा भिन दृष्टिकोण अपनाया है। इनके अविस्मरणीय उपन्यासों के 'अविस्मरणीय नारी पात्रों' के माध्यम से वर्तमान युग में समाज की स्थिति, प्राचीन और आधुनिक युग में प्रेम के स्वरूप में आए परिवर्तन स्वतंत्रता और सुरक्षा आदि तत्वों के विविध आयामों को प्रदर्शित करने का प्रयास किया है, साथ ही समाज में आधुनिकता के प्रचलन के कारण और पुरूष शासित समाज की दमनकारी नीतियों के विरोध में उठे नारी पात्रों का सामाजिक और मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत किया है । नारी पात्रों के अध्ययन का मुख्य कारण नारी जीवन को निकट से जानना और महसूस करना था जो अपनी अस्मिता की लड़ाई घर के दायरे में रह कर भी लड़ती है और जब यह 'घर की दहलीज' उन्हें बेबस और लाचार बनाने का प्रयत्न करती हैं तो वह इसे लाँघ देती है । नारी का

'बाहर' और 'भीतर' आज भी अत्यन्त उलझा हुआ है । इस तेज भागते हुए युग में अपने समस्त अधिकार पा लेने के पश्चात् एवं समस्त योग्यताओं के बावजूद वह अपनी अस्मिता की तलाश में व्यस्त है। उसकी अस्मिता और अस्तित्व को भिन्न-भिन्न प्रकार से आँका जा रहा है लेकिन प्रश्नों का कहीं अंत नहीं है । इन्हीं प्रश्नों को समझने और सुलझाने का प्रयास इस शोध में किया गया है ।

विषय सूची

1. हिन्दी के उपन्यास साहित्य में स्त्री चित्रण का स्वरूप। 2. स्त्री कथा साहित्य के मूल्यांकन में स्त्रीवादी सैद्धांतिकी का परिप्रेक्ष्य। 3. कृष्ण सोबती और अमृता प्रीतम के उपन्यासों के नारी चरित्रों का सामाजिक आधार। 4. कृष्ण सोबती और अमृता प्रीतम के उपन्यासों में स्त्री समस्याऐं । 5. सांप्रदायिकता की समस्या, भारत विभाजन और कृष्णा सोबती और अमृता प्रीतम। 6. सामाजिक संस्कृति का स्त्रीवादी परिप्रेक्ष्य और कृष्णा सोबती और अमृता प्रीतम के नारी पात्र। 7. अमृता प्रीतम और कृष्णा सोबती के कथा-साहित्य में स्त्री-भाषा का चरित्र और स्वरूप। उपसंहार । संदर्भ-ग्रंथ सूची।

220. शर्मा (अनुपमा)

स्वातन्«योत्तर नाट्य-साहित्य में स्त्री-पुरूष सम्बन्ध की समस्या।

निर्देशक : डॉ. रमेश गौतम

Th 17977

सारांश

स्वातन्«योत्तर नाटक वैवाहिक जीवन के सन्दर्भ में आधुनिक मनुष्य के वातावरण एवं धुरी से विच्छिन्नता के कारण उसके अजनबीपन, अकेलेपन, आक्रोश, रिक्तता, अधूरेपन, संत्रास और भय के सघन बिन्दुओं को अनुभूति की प्रमाणिकता के साथ अंकित करता है । इस परम्परा में मोहन राकेश, डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल, उपेन्द्रनाथ अश्क, मन्नू भंडारी, सुरेन्द्र वर्मा, मुद्राराक्षस, रमेश बक्षी, शांति मेहरोत्रा, गिरिराज किशोर, मृदुला गर्ग, रेवतीशरण शर्मा आदि नाटककारों ने अपने नाटकों में स्त्री-पुरूष की आधुनिक परिणति और उसके चारित्रिक बिम्बों को उजागर करके स्त्री-पुरूष सम्बन्धों के नये क्षितिज और सूत्र प्राप्त किये हैं, जिनमें उनके पारस्परिक सम्बन्धों की सही पहचान और एक गहरी तलाश निहित है। प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में

मुख्य रूप से स्त्री-पुरूष (पति-पत्नी) सम्बन्ध को स्वतंत्रता के पश्चात् वर्ष 1948 से 1990 तक के नाटकों में सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, मनोवैज्ञानिक स्तर पर विवेचित करने का प्रयास किया गया है।

विषय सूची

1. सामाजिक संस्था एवं स्त्री-पुरूष सम्बन्ध। 2. स्त्री-पुरूष सम्बन्ध का सामाजिक परिप्रेक्ष्य। 3. स्त्री-पुरूष सम्बन्ध का सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य। 4. स्त्री-पुरूष सम्बन्ध का आर्थिक परिप्रेक्ष्य। स्त्री-पुरूष सम्बन्ध का मनोवैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य। उपसंहार। परिशिष्ट ।

221. शर्मा (ज्योति)
रीतिकालीन नीति-काव्य में युग-बोध।
निर्देशक : डॉ. मुकेश गर्ग
Th 17975

सारांश

भारतीय नीति साहित्य संसार में अपना महत्त्वपूर्ण एवं विशिष्ट स्थान रखता है। एक ओर नीति हमारा पथ-प्रदर्शन करती है तो दूसरी ओर यह हमारी उचित निर्णय लेने में सहायता कर हमें व्यवहार कुशल भी बनाती है। वैदिक युग से लेकर समसामयिक युग तक नीति की धारा अविरल प्रवाहित होकर मनुष्य का पथ-प्रशस्त करती रही है। रीतिकालीन नीति-काव्य समाज कल्याण तथा सांसारिक व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करने के उद्देश्य से लिखा गया है। रीतिकालीन नीतिकवियों वृन्द, बिहारी, गिरिधर कविराय, दीनदयाल गिरि, दयाराम, बैताल, घाघ एवं भड्डरी ने सामंतशाही तथा राजशाही के वातावरण में भी नीति वचनों के माध्यम से अपने को लोकमानस के धरातल पर जोड़ने का प्रयास किया। रीतिकालीन नीतिकवियों द्वारा व्यक्त नीतिकथन आज भी उतने ही सबल हैं तथा उनमें उसी प्रकार मार्ग निर्देशन की शक्ति है जो तत्कालीन समय में थी । इनके काव्य में लोक जीवन की सहज व सरल अभिव्यक्ति मिलती है। रीतिकालीन नीतिकवियों की काव्य संवेदना लोकमानस की भावभूमि का स्पर्श पाकर ही विस्तृत फलक पर अभिव्यक्ति पा सकी है।

विषय सूची

1. युग-बोध की अवधारणा और रीतिकालीन समाज। 2. नीति-काव्य परम्परा का विकास । 3. रीतिकालीन नीति-काव्यकारों की जीवन परिचय एवं कृतित्व। 4. रीतिकालीन नीति-काव्य में अभिव्यक्त सामाजिक बोध एवं सांस्कृतिक बोध। 5. रीतिकालीन नीति-काव्य में अभिव्यक्त आर्थिक बोध एवं राजनीतिक बोध। 6. रीतिकालीन नीति-काव्य में अभिव्यक्त धार्मिक बोध एवं दार्शनिक बोध । 7. रीतिकालीन नीति-काव्य में अभिव्यक्त भाषिक बोध । उपसंहार। सन्दर्भ-ग्रन्थ सूची।

222. सिंह (सत्य प्रकाश)

फणीश्वरनाथ रेणु के कथा-साहित्य में जाति-विमर्श ।

निर्देशक : डॉ. बली सिंह

Th 17972

सारांश

फणीश्वरनाथ रेणु का कथा साहित्य इस श्रृंखला की एक जरूरी और महत्वपूर्ण कड़ी है । हिन्दी कथा साहित्य में निहित 'मुक्ति' की उक्त प्रधान चेतना के साथ रेणु के कथा-लेखन का समभाव और सहभाव उसे 'जाति-विमर्श' की दृष्टि से देखने, समझने और विवेचित-विश्लेषित करने की प्रक्रिया में न केवल और मुखर होकर प्रकट होता है अपितु फणीश्वरनाथ रेणु की कथा-संवेदना के कतिपय उल्लेखनीय और विचारोत्तेजक आयाम, जिन्हें रेणु के कथा साहित्य की समीक्षाओं और आलोचनाओं में प्रायः समुचित महत्त्व और स्थान नहीं मिल सका है, उद्‌घाटित होते है । जाति-विमर्श की दुष्टि से फणीश्वरनाथ रेणु के कथा-साहित्य का विवेचन-विश्लेषण और अनुसंधान करने की प्रक्रिया में, उसे रूपायित और सृजित करने वाले उन ऐतिहासिक संदर्भों और परिप्रेक्ष्य को भी नये सिरे से देखना अनिवार्य हो जाता है जो न केवल रेणु के उपन्यासों और कहानियों को स्वरों की 'भिन्नता' और 'अनेकता' से भर देते है अपितु जिन्होंने एक हद तक भारतीय कथा-साहित्य की मूल-चेतना के आन्तरित विन्यास की भी सृष्टि की है । भारतीय 'अनुभव' कभी भी औपनिवेशिक अतीत के भीषण बोध से निरपेक्ष होकर विश्वास योग और अधिकारिक अनुभव नहीं हा सकता, इसकी आधारशिला की विशष्टता है । उसकी भारतीयता है । वस्तुतः इसी पुष्ठभूमि में भारतीय कथासाहित्य और लेखन में निहित औपनिवेशिक दासता से

मुक्ति के विराट भारतीय स्वप्नों के साथ फणीश्वरनाथ रेणु के कथासाहित्य में अभिव्यक्त जाति के 'प्रश्न' और विमर्श' की ऐतिहासिक तादाम्यता का मूल्यांकन और वस्तुनिष्ठ विवेचन-विश्लेषण भी हो सकता है ।

विषय सूची

1. भारतीय समाज का उपनिवेशकालीन अनुसंधान और जाति-विमर्श के एंतिहासिक स्त्रोत। 2. सुधारवादी, राष्ट्रवादी जनतांत्रिक आन्दोलन और जाति-विमर्श। 3. फणीश्वरनाथ रेणु का कथा-साहित्य : संक्षिप्त अवलोकन। 4. फणीश्वरनाथ रेणु के उपन्यासों में जाति-विमर्श। 5. फणीश्वरनाथ रेणु की कहानियों में जाति-विमर्श । उपसंहार। सन्दर्भ ग्रन्थ सुची ।

M.Phil Dissertations

223. अभिनव प्रकाश
'आत्मजयी' और 'वाजश्रवा के बहाने' में नचिकेता का तुलनात्मक अध्ययन ।
निर्देशक : डॉ. निरंजन कुमार

224. आकांक्षा
'अँधेरे में' में आख्यान का स्वरूप ।
निर्देशक : प्रो. सुधीश पचौरी

225. उषा कुमारी
'शताब्दी के ढलते वर्षों में' में आधुनिकता ।
निर्देशक : डॉ. प्रेम सिंह

226. जायसवाल (धवल)
भारतेन्दु के निबंधों में जनक्षेत्र की अवधारणा ।
निर्देशक : प्रो. अपूर्वानंद

227. दीपा
राजकमल चौधरी के काव्य की वैचारिक पृष्ठभूमि ।
निर्देशक : डॉ. संजय कुमार

228. धीमान (अलका)
आधुनिक नारी-चिंतन की दृष्टि से देव के नायिक-भेल का मूल्यांकन ।
निर्देशक : डॉ. मुकेश गर्ग

229. निराला (संतोष कुमार)
'बाबा बटेसरनाथ' में पर्यावरण के प्रश्न ।
निर्देशक : डॉ. तेज सिंह

230. पाण्डेय (महामाया प्रसाद)
'भारत : इतिहास और संस्कृति' में मुक्तिबोध की 'संस्कृति' की अवधारणा ।
निर्देशक : डॉ. आशुतोष कुमार

231. पासवान (कपिल देव कुमार)
'आधा गाँव' की भाषिक लैंगिकता ।
निर्देशक : प्रो. मोहन

232. पुरी (अजीत कुमार)
'वंदे वाणी विनायकों' की गद्य-शैली ।
निर्देशक : प्रो. हरिमोहन शर्मा

233. प्रमोद कुमार
उत्तरकांड और तुलसी का समाज दर्शन ।
निर्देशक : प्रो. गोपेश्वर सिंह

234. बालेन्द्र कुमार
केशव-मूल्यांकन : विवाद के बिंदु ।
निर्देशक : डॉ. अनिल राय

235. मीणा (रोशन लाल)
'उद्धव-शतक' का सौंदर्य-बोध ।
निर्देशक : डॉ. पूरनचंद टण्डन

236. मीणा (लहरी राम)
भारतेन्दु के ब्रजभाषा काव्य में मध्यकालीनता और आधुनिकता का द्वंद्व।
निर्देशिका : डॉ. अल्पना मिश्र

237. मीणा (सत्यनारायण)
केदारनाथ सिंह की काव्य दृष्टि (संदर्भ : 'बाघ' काव्य संग्रह) ।
निर्देशिका : डॉ. मंजु मुकुल

238. यादव (अनिरूद्ध कुमार)
नयी कविता के प्रतिमान और कविता के नये प्रतिमान का तुलनात्मक अध्ययन (विशेष संदर्भ : काव्य प्रतिमान निर्धारण) ।
निर्देशिका : प्रो. प्रेम सिंह

239. यादव (महन्थी प्रसाद)
विद्यापति पदावली की काव्य-भाषा ।
निर्देशक : प्रो. गोपेश्वर सिंह

240. यादव (रणजीत)
पद्माकर की वर्णन-शैली (संदर्भ : 'जगद्विनोद') ।
निर्देशक : डॉ. विनोद तिवारी

241. विनय कुमार
उर्वशी के विविध आलोचनात्मक पाठ।
निर्देशक : डॉ. राजेन्द्र गौतम

242. शुक्ल (आशुतोष)
'राग दरबारी' में लैंगिक पक्षपात (Gender Bias) ।
निर्देशिका : डॉ. कुमुद शर्मा

243. संदीप कुमार
'भारत भारती' में 'राष्ट्र' की परिकल्पना ।
निर्देशक : प्रो. रमेश गौतम

244. हरि प्रताप
आलोक धन्वा की कविताओं में प्रकृति और प्रेम ।
निर्देशक : प्रो. श्यौराज सिंह बेचैन

245. त्रिपाठी (सुमिता)
रहीम-काव्य में स्त्री-छवि ।
निर्देशक : प्रो. गोपेश्वर सिंह